

प्रो०

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत-ग्रन्थमाला ।

अनेक विद्वानों की सहायता से

भगवद्दत्त

संस्कृत-अध्यापक वा अध्यक्ष रीसर्च-विभाग

दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर द्वारा

सम्पादित ।

ग्रन्थाङ्क १ ।

ओ३म्
अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

अर्थान्
अथर्ववेद का तृतीय लक्षण ग्रन्थ ।
भायानुवाद-सहित ।

सम्पादक
भगवद्दत्त वी० ए०
संस्कृत-शास्त्र दयानन्द कालेज, लाहोर ।

प्रागः सम्प्रत १९६०-६१ १०२०
विजय म म० १९७७ सन् १९७० ई०

दयानन्दाय ३७

प्रथमदा ५०० प्रति]

[मूल्य १० रु०

Printed by Bhairo Prasada,
MANAGER VIDYA PRAKASHA PRESS LAHORE,
And Published by
THE RESEARCH DEPARTMENT D.A.V. COLLEGE, LAHORE



वेददात्रे परमगुरवे नमोनमः ।

अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका ।

भूमिका ।

आर्यावर्त्तीय इतिहास का मध्यम-काल पौराणिक याज्ञिक काल कहा जा सकता है । पौराणिक इस लिये कि उस समय यहाँ का वास्तविक अर्थ जो वैदिक काल में प्रचलित था, भूल चुका था या भुलाया जा रहा था । उस काल में याज्ञिक सम्प्रदाय के प्रभाव से यजुर्वेद और उसी की शाखाओं का अधिक अध्ययनाध्यापन होता था । अन्य वेद बहुत पीछे पड़ गये थे, और उन में से भी अथर्ववेद का पठन पाठन अत्यल्प रह गया था । फलतः अथर्ववेद सम्बन्धी वाङ्मय भी पीछे पड़ गया । अथर्ववेद सम्बन्धी उन्हीं भूले हुए ग्रन्थों में से यह पञ्चपटलिका भी एक है । आधुनिक काल में इस के विषय आदिकों का सब से प्रथम सुविस्तृतलेख पण्डित शङ्करपाण्डुरङ्ग का है । उन्होंने सायणभाष्य-सहित अथर्ववेद के सम्पादन में इस से पर्याप्त सहायता ली थी । तदनन्तर बिहड़ने ने स्वलिखित अथर्ववेदानुवादकी भूमिका में इस का उद्धरण किया । उक्त दोनों से पञ्चपटलिका की उपर्युक्त गिता का परिचय पाकर ही मैं ने इस ग्रन्थ के सम्पादन का साहस किया है । इस के सम्पादन में निम्नलिखित सामग्री काम में आई है ।

हस्तलिखित वा प्रकाशित प्राप्त-सामग्री ।

(अ) यह ग्रन्थ भण्डार्कर अनुसन्धान समिति का है । उन

के सन् १९१६ के सूचीपत्रानुसार इस की संख्या ४०० है । इस सख्यान्तर्गत ग्रन्थ में आठ भिन्न २ पुस्तक हैं । उन में पञ्चपटलिका चतुर्थ स्थान पर है । इस का आरम्भ है पत्र ४८ से और समाप्ति है पत्र ५६ पर । इस के लेखन कालादि के विषय में अन्तिम पुस्तक की समाप्ति पर यह वचन मिलता है —

“संवत् १७१७ वर्षे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे ११ रविवाराद्रे
अग्रे श्री अनङ्गपुर पतनमध्ये वास्तव्यं आभ्यन्तरनागर ज्ञातीय
पंचोली सोमजीसुत बृहस्पति जी पठनार्थ ॥ शुभं भवतु ।
कल्याणमस्तु ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥”

यह पुस्तक स्पष्टाक्षरों में बहुत शुद्ध लिखा हुआ है ।

(व) पूर्वोक्त सूचीपत्र में इस की संख्या ३६६ है । इस ग्रन्थ में इस के साथ तीन अन्य पुस्तकें हैं । स्थान इस का प्रथम और पत्र १—१० तक हैं । सूचीपत्र में लिखा है “Thoms comes from Bikaner” अर्थात् हसनलेक धीकानेर से आया है । यह इतना शुद्ध नहीं । कई स्थलों में बिन्दु दिये जाने से प्रतीत होता है कि यह प्रति-लिपि किसी अति प्राचीन और कहीं २ कृमिभुक्त पुस्तक से की गई है । इस ग्रन्थ के अन्त में कोई तिथि नहीं दी गई । आकृति से यह लगभग तीन चौथाई शताब्दी का प्रतीत होता है ।

‘अ’ और ‘व’ दोनों पुस्तकों का संशोधन हड़ताल से किया गया है ।

यह ‘अ’, ‘व’ दोनों पुस्तक किसी एक से या एक प्रकृति वाले पुराने ग्रन्थों से नकल किये गये हैं । कारण कि दोनों में प्रायः एक ही अनुश्रियाँ, एक सा लेख और एक से ही अक्षर छूटे हैं । यह

यात मुद्रितपुस्तक के नीचे दिये हुए पाठभेदों के देरने से स्पष्ट होत
होगी । यदि यह एक ही ग्रन्थ से नकल किये गये हों तो यह कहना
निरर्थक है कि 'अ' बहुत पहले नकल किया गया था और 'ब' बहुत
पीछे । निश्चय ही 'ब' के लिखे जाने के समय मूलपुस्तक वृद्धिमुक्त
होगया था या फट रहा था, क्योंकि जैसा पहले कहा गया है 'ब' में
बहुधा बिन्दु आते हैं ।

(बह) विहटने महाशय ने लण्डन ब्रिटिश अनुसूच्य से अथर्व-
वेदीय बृहत्संबानुक्रमणी नकल की थी । उस का सशोधन उन्होंने
एक वर्लिन के हस्तलेख से किया था । उस में पञ्चपदलिका के पाठ
भी कई स्थलों पर उद्धृत किये गये हैं । वही पाठ विहटने रचित
अथर्ववेदानुवाद के प्रत्येक अनुवाक की समाप्ति पर मिलते हैं । ये
उद्धरण चतुर्थ अंश पञ्चमपदल के ही हैं । इन का पाठ कई स्थलों
पर बहुत भ्रष्ट है ।

(श) एडिडत शङ्करपाण्डुरङ्ग ने स्वसम्पादित अथर्ववेदीय
सायणभाष्य के Critical Notice 'आलोचनात्मक विवर्णन' में
पञ्चपदलिका, पदल प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ अंश पञ्चम के अनेक भाग्य
उद्धृत किये हैं । उन को देख कर विहटने रचित अनुवाद के सम्पा-
दक श्री लैन्गमैन ने लिखा था—

Manuscripts of Pancapatali—Doubtless S P.
Pandit had a complete ms. of the treatise in his
hands, It is not unlikely that the ms which S P
Pandit used was one of those referred to by Aufrecht,
Catalogus catalogorum, p 315, namely Nos 178 79
(on p. 61) of Kielhorn's Report on the search of
Sanskrit mss in the Bombay Presidency during the
year 1880 81 (General Introduction (p LXXII))

१७६ तो हमारा 'अ' है । शंकरपाण्डुरङ्ग जी के पाठ इस से नहीं मिलते । अतः सम्भव है कि उन्होंने १७८ देखा हो जो हमारे पास नहीं है । इस से अधिक सम्भव यह भी है कि उन्होंने किसी अथर्व-वेदीय श्रोत्रिय से अपने लिये यह पुस्तक प्राप्त किया हो, जो न जाने अब कहां होगा ? इस अनुमान का यह कारण है कि पूर्वोक्त सूची-पत्र के १७८ और १७६ अंक वाले ग्रन्थ निकटस्थ स्थानों से प्राप्त होने के कारण, बहुत अंशों में एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं ।

पञ्चपटलिका कब लिखी गई ?

अथर्ववेद भाष्य ३।१०।७ के अन्त में सायण (वि० सं० १४०७-४४) का यह वचन है —

“पूर्णा दर्शति पृथग्ग्रहणात् “ग्रहणम् आ ग्रहणात्” (कौ० ८।२.१.) इति न्यायात् विनियोगनिपये “आ मा पुष्टे च” इत्ये-
कावसाना ऋक् । पञ्चपटलिकायां (३।१.१.) तु व्यवसाना
एकैव ऋग् इत्युक्तम् । ”

यहां पञ्चपटलिका का मत उद्धृत किया गया है । इस के अनुसार ३।१०।७ तीन अवसानों वाली एक ही ऋचा है, परन्तु कौशिक सूत्रानुसार ये दो ऋचाएं हैं, पहली एक अवसान वाली और दूसरी दो अवसानों वाली ।

कौ० ८।२.१, पर टीका करते हुए दारिल लिखता है —

“पुनरुक्तप्रयोगः । पञ्चपटलिकायामेव कथितः । आर्षी-
संहितायाः कर्मसंयोगात् । आचार्य संहिताभ्यासार्थाः । ”

यहां पर दारिल ने पञ्चपटलिका के उक्तानुक्त न्याय की ओर संकेत किया है ।

अथर्ववेदीय परिशिष्ट सायण और दारिल से बहुत पूर्वकाल के हैं। उन में ४६ वां परिशिष्ट चरणव्यूह है। उस का वचन है —

“लक्षणग्रन्था भवन्ति । चतुरध्यायी, मातृशास्त्रम्, पञ्चपटलिका, दन्त्योष्ठविधिः, वृहत्सर्वानुक्रमणी चेति ।”

अथर्ववेदीय सर्वानुक्रमणी पूर्वोक्त तीनों साहित्यों में निरसन्देह बहुत पूर्वकालीन है। यह बात चरणव्यूह के पूर्वोद्धृत वाक्य से परिपुष्ट हो जाती है। उस में स्थल २ पर पञ्चपटलिका के अनेक वचन “इति” पद लगा कर या बिना इसके लिगे गये हैं। अतः पञ्चपटलिका का काल पर्याप्त पुरातन है। कितना पुरातन, यह कहना अभी बहुत कठिन है।

उपर्युक्त काल-क्रम-शृंखला में एक और बात भी प्चाल देने योग्य है। पञ्चपटलिका के प्रथम श्लोक में ही परिबन्ध का नाम आया है। यह पञ्चपटलिका उसी के मतानुसार कही गई है। इस परिबन्ध आचार्य का पता अथर्ववेदीय साहित्य में हमें नहीं मिला। एक उपरिबन्ध का पता कई स्थानों में लगना है। “पूर्वया कुर्वतेति गार्ग्य, पार्थश्रवस, भागलि, काङ्कायन, उपरिबन्ध, कंशिक, जाटिकायन, कौटपथ्यः” (कौ० ८६।१०)। यहां आठ आचार्यों का नाम है। उपरिबन्ध उन में पाँचवां है। यदि हमारा परिबन्ध इसका फेई सम्बन्धी है तो उसका मत जो पञ्चपटलिका में सम्प्रति मिलता है, अवश्य बहुत पुराना है।

संहिता-भेद ।

पञ्चपटलिका १।१७ में “आचार्यसंहिता” शब्द आया है। यह आचार्यसंहिता क्या थी, इस का निर्णय पूर्वोद्धृत दारिल के वाक्य में मिलता है। यथा—“आर्या संहितायाः फर्मसंयोगात् । आचार्यसंहिताम्यासार्यः” (कौ० ८।२१, २२)। इस से ज्ञात होता है

कि जिस संहिता में उक्तानुक्रमविधि चरितार्थ हो वह आचार्यसंहिता और जो विनियोगार्थ हो वह आर्षी संहिता कहाती है । विनियोग में मन्त्रों की कोई मात्रा भी नहीं छोड़ी जाती अतः उस में उक्तानुक्रम न्याय वर्त्ता नहीं जाता ।

संहिता-परिमाण ।

हस्तलिखित जितनी शौनकीय संहिताएं सम्प्रति मिलती हैं, वे सब बीस काण्डयुक्त हैं । सायणभाष्य भी बीसवें काण्ड के कुछ भाग पर मिल जाता है, यद्यपि उस में कुन्तापसूक्त (१२७-१३६) नहीं है । इन्हीं कुन्ताप सूक्तों के विषय में प्रायः विद्वानों का मत है कि इन का पदपाठ नहीं हुआ, क्योंकि आज तक अप्राप्त है । दयानन्द सरस्वती भी (सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अल्लोष्पनिपद के आगे) अथर्वसंहिता को बीस काण्डयुक्त ही मानते हैं । म्यून्फोल्ड, विहटने आदि पाश्चात्य लेखकों का मत है कि १८ काण्ड ही मूल संहिता-वर्तमान हैं । हरिप्रसाद ने वेदसूत्रस्थ के अथर्व-संहिता प्रकरण में मूल-संहिता का दश काण्ड पर्यन्त ही माना है । ये विचार क्या २ आधार रखते हैं, और इन में से कौन सा सत्य अथवा माननीय है, इस का विचार अथर्व बृहत्सर्वानुक्रमणी के सन्पादन हो जाने के पश्चात् किया जा सकता है । इस लक्षण ग्रन्थ में बीसवें काण्ड के भी ऋषि, देवता, छन्द आदि दिये हैं, यद्यपि उन का आधार आश्व-लायन की अनुक्रमणी है । उस का ध्यान यह है —

“अथैवमथर्वणे विंशतितमकाण्डस्य मूक्तसंख्या संपदाया-
हपिदेवतछन्दांस्याभनापनानुक्रमानुसारेणानुक्रमेप्यायः । खिल्ला
(नि) वर्तयेत्या ।” एतादृश पटन का मारम्भ ।

यहां इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य लेखकों ने पञ्च-

पटलिका का आश्रय लिया है और इस में अठारह ही काण्डों का वर्णन है । देखो २१५ तथा ३१२ इत्यादि ।

पञ्चपटलिका में हमें एक ही बात पटकती है । वह है ३१२ और ४१७ में । ३१२-के अन्त पर तो हमारी टिप्पणी भी है, यही बात ४१७ के अन्त में आई है । दोनों स्थलों में काण्ड १७ का पहले वर्णन है और १८ का पीछे । उत्तर स्थल में “यम” काण्ड १८ के अनुवाकों में मन्त्र संख्या कह कर “विपासहि” प्रतीक धर के १७ वें काण्ड का उल्लेख है । अन्य सब स्थलों में क्रमशः काण्ड वा सूक्तों का उल्लेख और यहीं पर भेद विशेष सुन्देहोत्पादक है । सम्भव है अथर्ववेदीय किसी अन्य शाखा में ऐसा ही काण्डक्रम हो और तत्सम्बन्धी लक्षणा ग्रन्थ यह पञ्चपटलिका आदि हों ।

संहिता-विभाग ।

अथर्ववेदसंहिता काण्ड, प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र, पर्याय, गण और अवसानों में विभक्त है । काण्ड रचना के सम्बन्ध में ब्लूमफील्ड और विहटने ने कल्पना की थी कि अठारह काण्ड तीन बड़े भागों में बाँटे जा सकते हैं । अर्थात्—

बृहद्	भाग	प्रथम	काण्ड १—७
"	"	द्वितीय	" ८—१२
"	"	तृतीय	" १३—१८

इन तीनों में अनुवाक, सूक्त और ऋचा आदि की रचना भिन्न २ क्रम से पाई जाती है । पञ्चपटलिका में भी “तिसृणामाकृतीनाम्” शब्द के प्रयोग से तीन प्रकार का विभाग किया है, परन्तु वह विभाग इस से कुछ थोड़ा-सा भिन्न है । पटलिका में दूसरा भाग ८—११ काण्डों का और तीसरा १२—१८ काण्डों का है । ऋचा-गणना के लिये पटलिका का क्रम अधिक उपयोगी है । यह बात पिछले गणना-कोष्ठों के देखने से सुस्पष्ट प्रतीत होती है । यदि धर्लिन

संस्करणानुसार प्रत्येक पर्याय-समूह को एक एक सूक्त माने तो ८-११ काण्डों में दश २ सूक्त ही पाये जाते हैं। अतः दारहवां काण्ड अगले विभाग में मिलाया गया है।

अठारह काण्डों में कुल मन्त्र ४६२७ हैं। यह गणना विहटने से भिन्न है। उसके अनुसार मन्त्र-संख्या ४४३२ है। भिन्नता का कारण पर्याय-सूक्त हैं। यह सारा भेद विहटने के नोटों के देखने से विदित हो जाता है। हमने गणना पटलिकानुसार दी है। इसी के अनुकूल मुम्नर संस्करण छपा है।

अथर्ववेद के प्रथम अठारह काण्डों में ३५ पैंताल स्थलों पर ४५ पैंतालीस ऋचाएँ बड़ी हैं जो इसी संहिता के पूर्व स्थलों में भी आ चुकी हैं। उन्नीसवें काण्ड में छः स्थलों पर सात देवी ही ऋचाएँ हैं। इन्हीं ऋचाओं के सम्यन्ध में पटलिका १।४ में कुछ नियम लिखे गये हैं। यदि कोई अकेली ऋचा दोबारा आवे तो लिखित ग्रन्थों में “इत्येका”, यदि दो आवें तो “इतिद्वे” इत्यादि लिखा होता है। इन्हीं सब ऋचाओं का क्रमशः वर्णन विहटने ने ‘इण्डेक्स चर्चरम’ में किया था। उसी की संशोधित नकल विहटने के अनुवाद के पृष्ठ cxix पर मिलती है। पाठकों के लाभार्थ हम उसे यहीं से उद्धृत कर देते हैं।

(१)	४	१७। ३ १	२८। ३
(२)	५	६। १ ४	१। १
(३)		२		७। ७
(४)		२३। १०-२ २.	३२। ३-५
(५)	६.	५८। ३ ६.	३६। ३
(६)		८४। ४	६३। ३
(७)		६४। १, २ ३	८। ५, ६
(८)		६५। १, २ ५.	४। ३, ४
(९)		१०१। ३ ४	४। ७

भूमिका ।

(१०)	७	२३१ १	१०।५
(११)		७५१ १	२१।७
(१२)		११२। २	६. २६। २
(१३)	८.	६।१८	५. २६।११
(१४)		२२	७ ७१। १
(१५)		६।११	३. १०। ४
(१६)	६.	१।१५	८ ८६। २
(१७)		३।२३	३. १२। ६
(१८)		१०। ४	७. ७३। ७
(१९)		२०	११
(२०)		२२	६. २२। १
(२१)	१०.	१। ४	४. १८। ५
(२२)		३। ५	६. ८५। १
(२३)		५।४६-७	७. ८६। १,२
(२४)		४८-६	८. ३।१२-३
(२५)	११.	१०।१७	५. ८। ६
(२६)	१३.	१।४१	६. ६।१७
(२७)		२।३८	१०. ८।१८
(२८)	१४.	१।२३-४	७ ८१। १-२
(२९)		२।४५	११। १
(३०)	१८.	१।२७-८	८२।४,५
(३१)		३।५७	१२ ८।३१
(३२)		४।२५	१८. ३।६८
(३३)		४३	६६
(३४)		४५-७	१।४१-३
(३५)		६६	७. ८३।३

(१) १६.	१३। ६	६. ६७। ३
(०)	२३।३०	१६. २२।२१
(३)	२४। ४	२. १३। २
(४)	२७। ४-५	१६ १६। १,२
(५)	२७। ४	५ २८।१३
(६)	५८। ५	२. ३५।५

ऋग्वेद वा अथर्ववेद में ऋचा-गणना प्रकार ।

ऋग्वेदीय कात्यायन सर्वांशुक्रमणी के परिभाषा प्रकरण में एक सूत्र है। 'द्विद्विपदानृच समागतम्' १२।८ अर्थात् अध्ययन समय में वेदपाठी लंग हों २ द्विपदा ऋचाओं को एक रचना कर पढ़ते हैं। इस नियमानुसार ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना के समय द्वा द्विपदा ऋचाओं को द्विगुण करके गणना की जाती है। ऐसी द्विपदा ऋचाएं अथर्व संहिता में भी देख पड़ती हैं। उन्हें हम श्रुति के अनुवाद से लेकर नीचे देते हैं।

का०	सू०	ऋचा	
२	१८	१-५	एकाधस्तान ।
५	१६	१-११	"
६	७, ४०१	१-६*, ८-१७, २०- १, २४- ६,	"
१६	१८	१-१०	दो अयस्तान ।

* श्रुति ने सान्नी ऋचा को एतपदा माना है। धीरुगेर वाली सर्वांशुक्रमणी में ऐसा लेख हमें नहीं मिला। तदनुसार यह भी द्विपदा है।

यहाँ पर पढ़ले तीनों रथलो की छिटा अवाओं की गँथना पटलिका में की गई है। वहाँ इन अवाओं को द्विगुण नहीं किया गया ।

उन्नीसवां कायद पटलिका में आया नहीं, अतः उस की अवा-गणना स्वर्गानुक्रमण से मिला ली गई है। अन्तिम उदाहरण दो अवसानों का है और पढ़ले तीनों में द्वावसान नृपाएं हैं। वात्यायन अपनी स्वर्गानुक्रमण में द्वा. दो अवसान वाली अवाओं को ही द्विगुण करता है, एकादशानों को नहीं। दूसरे स्वर्गानुक्रमणी वाले ने त. दो अवसान वाली अवाओं को भी द्विगुण नहीं किया । अनप्य ज. गण गप हमने ऊपर दी है वे इन विषयों पर अधिक प्रकाश पढ़ने के अनन्तर कदाचित् फिर बदलनी पड़ें।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में अवाओं के अवसानों की तुलना ।

अथर्ववेदीय को ई द्वावसाना अवा नहीं मिलती । व्यवसान अवाओं में से पांच के कुछ २ भाग ऋग्वेद में मिलते हैं । इससे यह न विचारना चाहिये कि वे ऋग्वेद में लिये गये थे और फाल-क्रम के कारण इस अवस्था को पहुँचा गये हैं । आर्य इतिहासानुसार अथर्ववेद भी उतनी ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद अतएव अनेक सदृशवाक्य वा वाक्य-समूह दोनों ग्रन्थों में प्रसंगतः कर्ता परमात्मा के एक होने से एक से आ सकते हैं । इसी प्रकार का अगली मन्त्र-तुलना में एक द्वा मन्त्र है । वह हमारे कथन को परिपुष्ट करता है । यह छः मन्त्र वा मन्त्रभाग ऋग्वेदीय सदृश मन्त्र वा मन्त्रभागों के साथ विशेष विचारार्थ नीचे दिए जाते हैं ।

अथर्ववेदीय व्यवसान ऋचापं ।

(१) इमामग्ने शरणि मीमृषो नो
यमध्वानमगाम दूरम् ।

प्रथमावसान ३।१५।४

(२) यस्योरुषु त्रिषु विक्रमशेष्य
धि क्षियन्ति भुषनानि विद्या ।

प्रथमावसान ७।२६।३

(३) स्वस्तिदा विशांपतिर्वृद्धहा
विमृषो वशी । प्रथमावसान ८।५।२२

(४) उय्नादयमादित्यो दिश्वेन
तपसा सह । सपक्ताग्नेमह्यं रन्धयन्
मा चाहं द्विपते रथं तवेद् विष्णोः
पहुधा वीर्याणि ।

प्रथम, द्वितीयावसान १।७।१२४

(५) शीतिके शीतिकावति ह्यदिके
ह्यदिकावति । मयद्रुन्य १ ऋ
शभुय इमं स्व १भिं शमय ॥

द्वितीय, तृतीयावसान १८।३।६०

(६) आ त्वाग्न इधीमहि युमन्तं
वेयाजरम् । यद् घ सा ते पनीय-
सी समिद् दीदयति घषि । इपं
स्नोतृभ्य आ भर ॥

आद्यन्त मन्त्र १।८।५८

ऋग्वेदीय व्यवसान ऋचापं ।

इमामग्ने शरणि मीमृषो न
इमसध्वानं यमगाम दूरात् ।

प्रथमावसान १।३।१६

..... ,

..... ,

द्वितीयावसान १।१५।१२

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृद्धहा
विमृषो वशी ।

प्रथमावसान १०।१५।२।२

.....

सहसा सह । द्विपते मह्यं रन्धयन्मो
अहं द्विपते रथम् ॥

आद्यन्त मन्त्र १।५०।१३

.....

मयद्रुन्य ३ सु संगम इमं रथ १-
भिं हरेय ॥

आद्यन्त मन्त्र १०।१६।१४

आ ते अग्ने इधीमहि

.....यद्दस्याते पनीयसी

समिद्दीदयति इधीपं स्नोतृभ्य

आ भर ।

आद्यन्तमन्त्र ५।६।४

उपर्युक्त छठा मन्त्र कुछ पाठ-भेद के साथ ही ऋग्वेद में भी मिल जाता है। अथर्ववेद में त्र्यवसान और ऋग्वेद में दो ही अवसानों वाला है। इस मन्त्र पर ब्रिटने ने स्यानुवाद में एक नोट दिया है। 'यह मन्त्र ऋग्वेद ५।६।४, सामवेद १।४१६ और २।३७२, तै० सं० ४।४।४।६ और मै० सं० २।१३।७ में मिलता है। इन सब ग्रन्थों का पाठ ऋग्वेद के समान है। शङ्करपाण्डुरङ्ग तीसरे पाद में 'यद् ध' पढ़ता है। हमारे हस्तलिखित ग्रन्थों में 'यद् ध' (पद् पा० यद् । ह) मिलता है।' पाश्चात्य लेखकों के अनुसार यदि यह मन्त्र मूलतः ऋग्वेद का था और वैसा ही सामवेद वा अन्य शाखाओं में मिलता है तो अथर्ववेद में इसका अकारण बदला जाना अवश्य अमान्य होगा। वे वैदिक आर्य्य जिनकी स्मृति शक्ति ने सामने सारा संसार जनशिर है, इतनी शीघ्रता से अपनी मान्य पुस्तक वेद के विषय में भूलने वाले न थे। और जो यह कारण कहो कि उन्होंने ऋग्वेद से पिछली संहिताओं में भाषा-परिवर्तन वा अन्य भेदों द्वारा पहले मन्त्रों को सरल करना चाहा तो भी युक्त नहीं। हम पूर्व कह आये हैं कि मूल अथर्ववेद ऋग्वेद जितना ही पुराना है, अतएव उस में तो ऋग्वेद के पाठ न आ सकते थे। शौनकीय अथर्ववेद वही मूलवेद है वा नहीं, यह हम अभी नहीं कहते, परन्तु यह निश्चय ही सन्देह-सीमा से ऊपर है कि अथर्ववेद में ऋग्वेद से मन्त्र न लिये गये थे। ऐसी अवस्था में पूर्व दिये हुए मन्त्र कुछ और ही परिणाम देंगे, अर्थात् कर्त्ता परमात्मा ने मूल चार संहिताएं चार ऋषियों के हृदय में स्वतन्त्ररूपेण प्रकाशित कीं। हमारे इस लेख पर अनेक लोग आक्षेप करेंगे। उन से हम यही निवेदन कर देने हैं कि यहाँ यह बात केवल प्रसंगतः कही गई है; इसका सप्रमाण निरूपण हमारे एक और ग्रन्थ में है जो शीघ्र ही छपेगा। उसके देखने के अनन्तर जिस की जो इच्छा हो कहे।

कुछ पटलिका के अनुवाद के सम्बन्ध में ।

हमारे पास उक्तानुक्त-नियम-क्रम को साक्षात् देखने के लिये कोई लिखित संहिता नहीं, अतएव प्रथम पटल के अनुवाद में बहुत सन्देह रहा है । अनुवाद हम ने इस लिये दे दिया है कि आगे इस से सहायता ली जा सकेगी । पटलिका के अनेक पाठ सन्दिग्ध ही रहे हैं । उन के विषय में हम कुछ कर नहीं सकते थे । हस्तलिखित सामग्री अत्यल्प थी । मूल ग्रन्थ या अनुपादादि में जो प्रतीकादि का पता दिा गया है वह बर्लिन संस्करणानुसार है । अजमेर संस्करण इस की नकलमात्र है ।

इस ग्रन्थ की अनेक बातों के समझने और पाठादि निर्धारित करने में अपने कालेज के बी० ए० के 'विद्यार्थी' शास्त्री भीमदेव ने मुझे बड़ी सहायता दी है । मेरे मित्र पं० विश्वबन्धु पम० ए० ने भी मुझे कई स्थलों पर अपनी सम्मति देकर कृतार्थ किया है । म० देशराज विद्यार्थी बी० ए० श्रेणी तों बहुत काल से मेरे ग्रन्थों का मूफ संशोधन करते ही हैं । इन सब सज्जनों का मैं हार्दिक श्म्यवाद करता हूँ । अन्य अनेक विठानों के प्रति भी कि जिन के ग्रन्थों से मैं ने बहुत सहायता प्राप्त की है, मैं यहां अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ । अन्न में महाशय ए० सी० बूलवर पम० ए० प्रिन्सिपल ओरियण्टल कालेज तथा श्री डाक्टर वेल्लेलर पम० ए० का मैं प्रतीध धन्यवाद करता हूँ कि जिनकी उदारता से मुझे मूल हस्तलेख प्राप्त हुए ।

सर्गान्तर्यामी, वेदप्रकाशक आर्यगुरु परमात्मा सर्व अग्र्यजनों के हृदयों में पुनरपि वेदादि मूल्य शास्त्रों के पढ़ने का उत्साह उत्पन्न करें । इत्यम ।

दयानन्द पं० वं० कालेज
लालबहादुर पुस्तकालय लखनपुर,
ज्येष्ठ अदि १३२३ वि० सं० १९०३

{ भगवद्गुत्त

अथ

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

ओं



उक्तानुक्तस्य यं न्यायं प्रोवाच परिवेभ्रवः ।

पर्यायाणामृचां वापि तद्वक्ष्यामो यथाक्रमम् ।

यद्गुणा मव्यवेताना मनेकं सदृशं पदम् ।

आदिष्टं तेषु वा यत्स्यात्तदुक्तानुक्तमुच्यते ।

तदुत्पत्तौ तु संशब्दमन्त्ये प्रकरणस्य च ।

अन्यत्रैकं पदं वाच्यं तस्यारंभविरामयोः ।

अन्त्यमारंभणं विद्यादाद्यं विरमणं भवेत् ।

ते हः, गातरिक्षे, च विद्यादत्र निदर्शनम् ।

यतस्तूर्द्धं निवृत्तिः स्यादाद्यस्यान्त्यस्य वा पुनः ।

तेनैव तत्र धक्तव्ये तयोश्चान्तरे पदे ।

ने चकु, सूक्तसप्तम्यां दिशो वापुर्निदर्शनम् ॥१॥

आकारो यत्र धाद्यं स्यात्तत्रापि द्वे पदे भवेत् ।

सा पितृप्रभृतिष्वेहीत्येतदत्र निदर्शनम् ।

अवसानैकदेशश्च यो गच्छेदवसानताम् ।

प्रक्रमस्य समाप्त्यर्थं तत्रापि द्वे पदे भवेत् ।

यात्र, स्क्रमतमित्येते विद्यादत्र निदर्शनम् ।

अवसानं तु यद्भूत्वा भवेदवयवः पुनः ।

१. अ, आदिष्ट ॥ २. अ, व, सातदुक्त ॥ ३. अ, व, अत्य ॥

४. २।१६।२॥ ५. ८।१०।२, १॥ ६. अ, व, निवृत्ति ॥ ७. ५।३।१।१॥

८. ५।१०।१॥ ९. व, सातत्र ॥ १०. ८।१०।४, २॥ ११. ६।५।२२॥ १२. १०।७।४॥

पांत्या वदवसानानां तासामप्येवमुत्सृजेत् ।

वीरुतक्षेत्रिय नाशनीत्येतदत्र निदर्शनम् ।

अवसानं तु यत्तुल्यं सर्वमेवतदुत्सृजेत् ।

तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चत^३, कुर्वत^४ निदर्शनम् ।

यास्वेपिधिधिरुक्तासु तासु सर्वासु वैद्यदि ।

सदृग्यंत्यवसानानां तासामप्येवमुत्सृजेत् ।

यथाद्यौष^५, शेरभक्त^६, यो वै नैदाघ नाम^७ ।

यथा वातो वनस्पतीनित्येतदत्र निदर्शनम् ॥२॥

नानावसानयोर्भूत्वा यदेकस्मिन्पुनर्भवेत् ।

तेनैव सत्समाप्तव्य मेकस्मिन्चापि कीर्तयेत् ।

समिमा^१मुत्तार्या^२ च विद्यादत्र निदर्शनम् ।

पर्यायेष्वयसानानामृग्भिस्तुल्योपिधिर्भवेत् ।

सर्वदा^{११}, चिप्रमित्येते वैपरेत^{१२} निदर्शनम् ।

गणास्तु ये वसानानां संबंधार्थाः पृथक्पृथक् ।

तेष्वर्था विधिवद्बोद्ध्याः सोदग्राम^{१४} निदर्शनम् ।

अव्ययेषु च यद्दृष्टं व्यवेतेष्वपि दृश्यते ।

नत्तुल्यं व्यधर्धयेत तस्मिन्मत्कीर्तयेत्सकृत् ।

यदेनमाह^{१५} भाष्येति चतुर्थस्तं निदर्शनम् ।

१. व वसानां ॥ २. २।८२॥ ३. अ, व, तमिन्द्र. प्रत्यमुञ्चत ॥ ४.

२।५।३२॥ ५. २।१५।१॥ ६. २।२५।१॥ ७. अ, व, ग्राम, २।५।१.३१ ॥

८. १।५।१३॥ ९. १।८।२।५॥ १०. ५।१५।८॥ ११. १।०।१।२॥

१२. १।२।१।१॥ १३. अ, विद्यादत्र ॥ १४. अ, वि(दि ?)विधिः ॥ १५. ८।१।०।२॥

१६. अ, व, यदृष्टं ॥ १७. १।५।१।१।५ ॥

अत उद्धे यथोक्तेन न्यायेन पुनस्तृजेत् ।
 अन्ते च कीर्त्तयेत्तेन ते वश इति निदर्शनम् ॥३॥
 अचस्तुल्याः पुनश्चेत्स्युर्यावत्तासां विशेषणम् ।
 तावदुक्ता यथाशास्त्रमिति नासंदधीति च ।
 नतः संख्यां प्रयुंजीत या शशापेति निदर्शनम् ।
 द्वयोः न वो यनासीति तिसृणामत्रिवत्स्मृतं ।
 एकेति यत्र संदेहः पूर्वत्येवां विशेषयेत् ।
 यास्ते धाना इति पूर्वत्येतदत्र निदर्शनम् ।
 यत्र द्वे इति संदेह आदौ तत्र च कीर्त्तयेत् ।
 पूर्वापरं, नवो वव इत्येतदत्र निदर्शनम् ।
 एका मिति नाप्रदेशे द्वे तिस्र इति कीर्त्तयेत् ।
 चर्ग चर्चा पदांत्यादुर्यावत्तासां विशेषणम् ॥ ४ ॥

इति प्रथमः पटलः समाप्तः ॥

मायमघातः छंदसि । तिसृणामाहुतीनां सूक्तवर्णक मृष्य पर्या-
यिक यजुषामवसानं च विज्ञानाय व्याख्यास्यामः । चतुर्षु कांडेष्वदितः
२८ सूक्ता अत्राकाः पञ्चवर्जम् । महत्स्वेक वर्जम् । दश सूक्तास्तृतेषु
पञ्चवर्जम् । ऋक्सूक्ता एकत्रेषु । द्विसूक्ताः क्षुद्रेषु । अनुवाकसूक्ता
एकानृतेषु । कांडसूक्ताः शेषे पर्यायिकवर्जम् । ग्रात्यप्राज्ञापत्योरेव
पृथग्विभाषितमुत्तरं यत् । सूक्तावस्था यथा कांडम् । तत्र न प्रत्युपायो न
दुर्यायः ? आपयादिका न्यधिकानि । महत्सु कांड समवायोऽष्टर्चं प्रभृ-
तीनामाहुतीनां मष्टादशेभ्यः पोंडशवर्जम् ॥५॥

ये त्रिपत्ता (१।१) ये ३ स्यात्स (३।६) यद्येक वृषोति (५।४)
इति पदमूलाः । अत्र सूर्यमुदयताम (१।५) अग्नीवर्त्तेन (१।६) दृष्ट्या
दृष्टिरिति (२।३) इति मममूलाः । आतृव्यक्षयणम् (२।४) इति नवमूलाः ।
इमा यास्तिष्ठः पृथिवीः (६।३) वैश्वानरः (६।७) संदानं यो (६।११)
यदेया देवहेडनम् (६।१२) इत्येकादशमूलाः । यनस्पते धीर्द्वंगः (६।१३)
इत्यष्टादशमूलाः । एकत्रेषु प्रथमचतुर्थीं त्रयोदशमूलाः । द्वितीयाष्टमौ नव । तृती-
याष्टौ षोडश । पंचमस्तमावष्टौ । षष्ठश्चतुर्दश । नवमो द्वादश ॥६॥

विदूमा शरस्य पितरम् (कां० १ सू० ३) द्वितीय नवकम् । स्तुवान-
मग्रे (७) मत् । धावत् ते पूषन् (१।११) अग्नीवर्त्तेन (२।६) इति पदम् ।
इयं धीमत् (३।४) इति पदम् ।

१. य, गिव्य ॥ २. य मे नही हे । अ मे भी पीडे हाशिये पर लिखा गया
हे ॥ ३. अ, य, पद्वर्जम् ॥ ४. अ, य, य ॥ ५. इन कोष्ठो मे काण्ड और
अनुवाक दिये हे ॥ ६. अ, य, विश्वानरः ॥ ७. अ, य, पञ्चम ॥

अदो यद्वधावति (२।३), दीर्घायुत्वाय (४) इति पदक । इन्द्र-
जुषस्य (५) इति सप्त । क्षेत्रियात् त्वा (१०) धावापृथिवी उरु (१२)
इत्यटके । निः सालां धृष्णुम् (१४), यथा धौध्र (१५) इति पदक । भोजो-
स्यो जो मे (१७) सप्त । शेरमक (२४) अष्टौ । ने छद्गुः (२७), पार्थिवस्य
(२६) इति सप्तक । उद्यन्नादित्यः (३२) पद । अक्षीम्यां ते (३३) सप्त ।
आ नो अग्ने (३६) अष्टौ ।

आ त्वा गन् (३।४) सप्त । आयमगन् (५), पुमान्पुंसः (६) अष्टके ।
हरिणस्य (७) इति सप्त । अथमा ह (१०) त्रयोदश । मुंचामि त्वा (११)
अष्टौ । इहिव ध्रुवाम् (१२) नव । यद्वः संप्रयतीः (१३) सप्त । इन्द्रमहम्
(१५) अष्टौ । प्रातरग्नि (१६) सप्त । सीरा मुञ्जंति (१७) इति नव । सं-
शितं मे (१६) अष्टौ । अयं ते योनिः (२०), ये अग्नयो (२१) दशके ।
अस्यतीः (२४) सप्त । यद्राजानो (२६) अष्टौ । सहृदयम् (३०) सप्त ।
अदेवा (३१) एकादश ।

य आत्मदा (४।२), यांत्वा गन्धर्वो अखनद् (४), ब्राह्मणो जज्ञे (६)
इत्यष्टकानि । दहि जीवम् (६) दश । अनङ्गवान दाधार (११) द्वादश ।
अजो हान्तेः (१४) नव । समुत्पतन्तु (१५) षोडश । बृहन्न्येषाम् (१६) नव ।
ईशानां त्वा (१७), समं ज्योतिः (१८), उतो अस्य बन्धुकृद् (१९) इत्यष्ट-
कानि । आ पश्यति (२०) नव । अहं रुद्रेभिः (३०), अप नः शोशुचदधम्

१. अ, व, क्षेत्रिया ॥ २. अ, व, पुंसः ॥ ३. अ, व, इहिव । यह अशुद्धि
माधारणतया हो सकती है । 'अ' प्रकार के पुराने ग्रन्थों में हि-है बनता है । अतः
लेखक प्रमाद से यही हि हो गया है ॥ ४. अ, व, तरमि ॥ ५. अ, व, पयः ॥
६. अ, व, बृहन्न्येषा ॥ ७. अस्य ॥

(३३) ब्रह्मास्य शीर्षे बृहद् (३४) इत्यष्टकानि । तांस्त्वयौजाः (३६) दश ।
त्वया पूर्वम् (३७) द्वादश । पृथिव्यामग्नये (३९) दश । ये पुरस्ताज्जुह्वति
(४०) इत्यष्टौ ।

ऋगङ्मंत्रः (५१), तदिदासं (२) इति नवके । ममाग्ने
घञः (३) एकादश । यो गिरिषु (४) दश । रात्रि माता (५) नव । ब्रह्म
जज्ञानम् (६) चतुर्दश । आ नो भर (७) दश । यैकङ्कतेन (८) इति नव ।
दिवे स्वाहा (९), अदम यमं मेस्ति (१०) इत्यष्टके ।

विच्छेद दोषस्तु पूर्वस्मिन्पादं ये व्यवसन्त्यने च देवहेडनो ब्रह्मण्यग्निमंगरमा-
मेव मेतश्चतुश्चैवान्यष्टर्धा न व्यभिमीतान्यत आगमोहि ॥ ७ ॥

कथं महे (५११), समिद्धं अद्य (१२), ददिहि मह्यम् (१३) इत्येका-
दशकानि । सुपर्णस्यान्वयिदत् (१४) त्रयोदश । एका च मे (१५), यद्येक-
वृत्रंभि (१६) इत्येकादशके । ते घटन् (१७) अष्टादश । नैतां ते (१८),
अतिमात्रम् (१९) इति पंचदशके । उच्चैर्धोवः (२०), विहृदयम् (२१)
इति द्वादशके । अग्निस्तपमनम् (२२) चतुर्दश । आं ते मे चावापृथिवी (२३)
त्रयोदश । सयिता प्रसवानाम् (२४) इति गतदश । पर्वताद्विद्यं योनेः
(२५) इति त्रयोदश । यजुंषि यज्ञे (२६), ऊर्द्धा अस्य (२७) इति द्वादशके ।
नय प्राणान् (२८) चतुर्दश । पुरस्ताद्युक्तो घट (२९) पंचदश । आद्यतस्ते
(३०) गतदश । यां ते चक्रुः (३१) द्वादश ॥ ८ ॥

आययां (६१६), यथेयं पृथिवी मही (१७), मिहे व्याघ्रे (३८),
यत्ते देवो निरंतिः (६३), य एनं परिषीदन्ति (७६), अपचितः प्रपतत

(८३), यस्यास्त आसनि घोरे जुहोमि (८४), विश्वजित्^१ त्रायमाणायै
मा परि देहि (१०७), इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि (१११), विपाणा
पाशान्विद्याव्यस्मद् (१२१), शकधूमं नक्षत्राणि (१२८), रथजितां
रथजितेयीनाम् (१३०) इति तृतेषु चतुश्चानि द्वादश ।

प्राप्त्रये वाचमीरथ (३४), त्वं नो मेध (१०८), एनं भागम्
(१२२), एनं सधस्थाः (१२३), यं देयाः स्मरमसिचन् (१३२), य इमां
वेयो मेमलामाययंध (१३३), त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा (१३८), न्यस्तिका-
रुरोहिथ (१३९) इति तृतेषु पञ्चान्यष्टौ ॥६॥

धीती वा ये (कां० ७ सू० १), यथा सूर्य (सू० १३), प्र नमस्व
(१८), अयं सहस्रम् (२२), ययारोजस्ता (२५), अग्नाविष्णु महि (२६),
यस्य व्रतम् (४०), अति धन्यानि (४१) इति द्वे (४२) । जनाद्विदजनी-
नात् (४५), कुहं देधीम् (४७) इति त्रीणि (४८ तथा ४९) । संज्ञानं न.
(५२), ऋचं साम (५४), यदाशस्ता (५७) इति द्वे (५८) । यदग्ने तपसा
(६१), इदं यत् कृष्ण (६४), प्रजावती (७५), वि ते मुध्मामि (७८),
यो नस्तायत् (१०८), शुम्भनी (११२) त्रीणि (११३ तथा ११४) । नमो
रुराय (११६) इति द्वाचानि एकत्रेषु ।

प्रान्यात् (३५), सिनीवालि (४६), प्रतीचीनफल (६५), सर-
स्वति व्रतेषु (६८), उत्तिष्ठताव (७२), सांतपना (७७), अनाधृष्यः
[८४] अपि वृश्च [९०], उदस्य द्यावौ [९५], अग्ने इन्द्रश्च [११०]
इति तृचानि ।

१ अ, विश्वजि । न, विश्वानि ॥ अ में मी 'न' को ही पीछे से 'ज' बनाया गया है ॥ २ इति त्रीणि ॥

अदितिर्द्यौः [६], प्रपये ययाम् [६], समा च मा [१२], अमित्यम
देवम् [१४], घाता वनात् नः [१७], यत्ते देवा अकृण्वन् [७६], पूर्णा
पश्चात् [८०] इत्यैवैकैर्वा प्राजापत्यम् । अप्सु ते राजन् [८३], अपो दिव्याः
[८६], प्र पतेतः [११५] इति चतुर्वर्चानि ।

यहेन यज्ञम् [५], इदं अनामि [३८], यत्किंचासौ [७०] इति
पञ्चवर्चानि ।

अन्यद्य नः [२०], पूर्वापरम् [८१] अन्यर्चत [८२] इति षड्वर्चानि ।

अमुवभूयात् [५३], ऊर्जं विम्रत् [६०], इदमुप्राप [१०६] इति
सप्तवर्चानि ।

यिष्मोर्नु कम [२६], तिरश्चिराजेः [५६], यद्यत्वा [६७] इति
अष्टवर्चानि ।

यथा वृक्षम् [५०] इति नववर्चं सूक्तम् ।

समिद्धो अग्निर्दृयणा [७३] इत्येकादशवर्चं दशसूक्तम् ।

अपचिताम् [७४] इति तदर्थं सूक्तानि चत्वारि । अपचिन्ने-
पजम् । इर्पापनयनम् । व्रतोपायनम् । गोष्ठव्रतीयम् च ॥६॥

इति द्वितीयः पटलः समाप्तः ।

१. य, इत्यद् [मिति द्वे अ ?] यंसूक्तानि ॥ २. य, व्रतीयम् ॥

३. अ, य, इति द्वितीयोऽप्यायः पटलः समाप्तः ॥

आर्षोपापदे पूर्वे प्रोक्ता सूक्ता प्रथमस्थया ।

नियतं^१ ऋचामग्र मृषिमिध्व महापथः ।

सूक्तानां परिमाणार्थं ऋचामग्र प्रमाणितम् ।

ऋचाग्रेण तु सूक्ताग्र सूक्ताग्रेण तु सद्विताम् ।

तस्मात्सूक्ताग्रपरिमाणेन तपसाधीत्य सद्विताम् ।

आर्षेयी मृषिमिरम्यदत्तां सूक्ते. सप्रदायामधीमहे ॥१०॥

संरासाधस्मभ्यमस्तु राति. (१।२६।२), सुपूदत मृडत (४) ।

प्राणापानौ (२।१६।१) शेरमके^३यात ।

मुमुक्तमस्मान् (५।६।८), दिवे स्याद्वा (६।१—६) इति पद । यद्येक-

धृषोसि (१६) इत्येकादश । यजूपि यद्मे (२६।१—२१) इत्युत्तमा वर्जयित्वा ।

वेवो वेत्रेषु (२७।२—७) इति पद ।

पृथिव्यै श्रोत्राय (६।११) इति तिष्ठ । वीहि स्वाम् (८।३।४), स

पचामि (१२।३।४), दह प्रक्षान् (१३।६।२) ।

अय सहस्रमा नो (७।२२।१), योऽन्येद्यु (११।६।२) ।

ते त्वा रक्षन्तु (८।१।१४) ।

पृथिवी दड. (६।१।२१), प्राच्या दिश शालाया (३।२५—३१)

साहस्र इत्यात । तास्ते रक्षन्तु तत्र (५।३।८) ।

सोमो राजा (१०।१।२२), इमे मयूखा (७।४।४) ।

चक्षु श्रोत्रम् (११।५।२५) ।

ता न प्रजा (१२।१।१६), अग्निवास्ता (२१), अग्ने अकन्यात्

१ अ, व, नै ॥ २ व, तस्मात्सूक्ताग्रति ॥ ३ अर्थात् शेरमक (२४)

(२।४२), अन्तर्धिर्देवानाम् (४४), सर्वानग्रे (४६) ।

धर्तासि धरुणोमि (१८।३।३६), उद्भूपरसि (१७), अक्षितिम् (४।२७), शुभंतां लोकाः पिनृषदनाः (६७) इति द्वे । अग्नये कव्ययाहनाय (७१) इति प्रभृति येन पितरः (८६) इत्यातः, एकावसाना ॥१२॥

शं ते अग्निः (२।१०।२) इति मम ॥

आमा पुष्टे च पोषे च (३।१०।७), अमित्वा जरिमाहित (११।८), इमामग्रे शरणिम् (१५।४), उद्भयन्ताम् (१६।६), यत्ते यत्नः (२।२।४), प्राची दिक् (२७) इति पदक । क इदम् (२।६।७) ।

इन्द्रो रूपेण (४।११।७), एष यज्ञानाम् (३।४।५), नदीं यं स्वप्सरसः (३।७।३), या यैः परिनृत्यति (३८।३), सूर्यस्य रश्मीन् (५), अन्तरिक्षेण (७) इत्युत्तमाम् । पृथिवी घेनुः (३।६।२), अन्तरिक्षं घेनुः (४), द्यौर्धेनुः (६), दिशो घेनयः (८) ।

अधर्मधेन (५।१।६), इन्द्रायाहि (८।२), अभैनानिन्द्र वृषहव (६), उदायुचद् (६।८), घृहता मनः (१०।८), देवो देवाय (११।१६), अयं लोकः (३।०।१७) ।

अवैरहत्याय (६।२।३३), विद्म ते स्वप्नं जनित्रम् (४।६।२), यथा मांसम् (७।३।१) इति तिङ्गः (२ तथा ३), यो अद्भ्यः (१२।७।३), म्यस्तिक्ता करोहि (१३।६।१) ।

यस्योरुषु (७।२।३३), पदमाः स्थ (७।५।२), अपेक्षारिः (८।८।१), यथा शेषः (६।०।३) ।

१. वर्तित संस्कारण मे यद् अथा दो अवसानो वाती है । मुम्बई संस्करण मे तीन अवसान हैं ॥

मा त्वा क्रव्यात् (८।१।२२), शित्रे ते स्वात् (२।१४), कश्यपस्त्वाम् (५।१४), स्वस्तिदा (२२), ये शालाः (६।१०), येषां पश्चात् (१५), उद्धविष्याम् (१७), याः सुपर्णाः (७।२४) इनां जय (८।२४) ।

यद्वाग्ने (६।१।२४), अन्तरा घाम् (३।१५) ।

आरे अभूत् (१०।४।२६), अंग्रमार्गस्य (५।७) अन्यर्त्ता (८—१४) ।
विष्णाः क्रमोऽसि (२५) इवेरादत्त (२६—३५) । नमिन्द्रः (६।७) इति
चतस्रः (८—१०), तेनेमां मणिता कृषिम् (१२) इति पद (१३—१७) ।
उत्तर द्विपत्त. (३१), ये पुरुषे (७।१७) ।

नमस्ते घं पिशीम्यः (११।२।३१), ये वादयः (६।१), अर्धुदिर्नाम
(४), श्वन्वतीरप्सरस (१५), पद्भूरेऽधिवंशमाम् (१६), ये च धीराः
(२२), वनस्पतीन्मानस्पत्यान् (२४), ईशां घो मरुतां देव. (२५), ईशां घो
वेदराज्यम् (१०।२), वायुरमित्राणाम् (१६) ।

यायांवेऽधि (१२।१।८), यामध्विनौ (१०) इति चतस्रः (११—१३) ।
महत्सधस्थम् (१८), भूम्यां देवेभ्यः (२२), यस्ते गन्धः पुरुषेषु (२५),
यच्छयानः पर्यायर्त्तै (२४), यापसर्गं विजमाना विमृग्यरी (३७), यस्यां
सदो हविर्धाने (३८), यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति (४१), यां द्विपाद.
पक्षिणः संपतन्ति (५१), प्राच्यै त्वा दिशे (३।५५) इति पद (५६—६०) ।

१ वर्लिन संस्करण में चार अवसान हे । मुम्बई संस्करण में तीन अवसान
देकर नीचे टिप्पण दिया है कि A R put a vertical stop after

यस्माद्वाताः (१३।३।२), यो मारयति (३), यः प्राणैर्न (४), अहा रात्रैर्धिमितम् (८), सम्यञ्च तन्तुम् (२०), वि य प्रौर्णाति (२२) ।

इदं सु मे (१४।२।६), अद्वाद्द्वात् (६६) ।

इं ते नीहारो भवतु (१८।३।६०), यज्ञं पति (४।१३), आ त्वा अग्ने इधीमहि (८८) इति ।

पियासहिं सहमानम् (१७।२।१) इत्यष्टौ (२-८) । त्वं न इन्द्रो-
तिभिः (१०) इति चतस्रः (११-१३) । त्वं रक्षसे (१६), त्वमिन्द्रस्त्वं
महेन्द्रः (१८) इति द्वे (१६) । उद्गादयमादित्यः (२४) इति त्रयवसानाः ॥१२॥

यो वै नैदाघं नाम (६।५।३१), यो व आपोऽपां माग (१०।५।१५)
इति सप्त (१६-२१) । य इमे चावापृथिवी जज्ञान (१३।३।१) इत्येका ।
यस्मिन्विराट् (६) इति तिस्रः (७ तथा ८) । कृष्णं नियानम् (६) इत्ये-
कादश (१०-१६) । निम्नुचस्तिस्त्र (२१), त्वमग्ने कर्तुभि केतुभिः (२३)
इति तिसृस्त्वनुरवसानाः ।

यो वै कुर्वते नाम (६।५।३२) इति पंच (३३-३६) पंचावसानाः ॥१३॥

इति तृतीयः पटलः ।

१. बर्लिन सस्करण मे दो अवसान है । मुम्बई सस्करण मे तीन ही हैं ।
दोनों में प्रथमावसान का भेद है ॥ २, अ, व, दोनों में बहुत भ्रष्टपाठ है ॥
३ इस पर शंकरपाण्डुराज का टिप्पण में पाठभेद देखो ॥ ४. अ, व, दोनों
पुस्तकों में पाठक्रम यही है । न अग्ने १८ का कारण पहले और १७ का पीछे
क्यों आया !

आद्यप्रथम ऋचो नव स्युर्विधात् । पञ्च परे तु । पचमेऽष्टौ ।
एकादश चोत्तरे पराः स्युः । विंशत्या कुरुते । विंशकावतोऽन्या ।

पंचर्चाद्यो विंशते स्युर्नवोद्धम । ततः परांत्ये । अष्ट कुर्याद्द्वितीये ।
अष्टौ न तस्माच्छ्रुताश्चै तृतीये । द्व्यन तुरीयः । विंशदेकाधिकोऽत्यः ।

विंशानिमिताः षडर्चेषु कार्यास्तिष्ठो दशाष्टौ च दशपंचर्चा चतु-
र्दशांत्या अनुवाकशब्ध संख्यां विद्यादाधिकां निमित्तात् ।

सप्त । नव । एकाविंशतिः । अथ कुर्याद्द्वादश । अपराः पंच । षट् ।
सप्त चापि घोष्याः । सप्तदशांत्याः षडर्चवच्च ।

आद्यात्पर एकादशहीनः षष्ठिः । द्विषड्भिराद्य । तिसृभिस्तृतीयः ।
षष्ठे तु नवैका च । परा च षष्ठेनैव ।

अपर एक वृषः (अनुवाक ४) व्यतीतिः ॥१४॥

प्रथम, दशम, पंचमाः स षष्ठिस्त्रिंशत्का । द्व्यधिकौ, अपचिद्,
द्वितीयौ । चतसृभिरधिकस्तु सप्तमः स्यात् । एकाविंशक मष्टमं षडन्ति ।
अष्टाविंशो द्वादशः । प्राक् तस्मात्सप्तविंशः । यः परः स चतुःषष्ठिः ।
तृतीयचतुर्थौ अष्टिस्त्रिंशत्का ।

१. अ, व, ततो परान्ते । न्ह, ततो परांत्ये अथवा पराते ॥ २. अ, व, अष्टौ न ॥

३. न्ह. तु ॥ ४. न्ह, एकत्रिषष्टिः । ब्रिटने ने स्वयं लिखा था, 'यह अस्फुट है' ।
वस्तुतः लेखक-भ्रम से वृष ही त्रिष (ष्टिः) हुआ है ॥ ५. अ, य, द्वादश
प्रोक्त । अगला पद 'प्राक्' जिसके आगे 'त' है, 'प्रोक्त' बन गया है । ब्रिटने का
उपयुक्त पाठ बहुत ठीक है ।

तत एकर्चानां कीर्त्तयिष्यामि संख्याम् । अष्टावाधे । द्वे द्वितीये
तु विद्यात् । अष्टौ तिस्रश्चाथ योष्यास्तृतीये । ङौ पंचर्चा सन्निविष्टौ
चतुर्थे । पंचयंष्टौ विंशतेः पंचमे स्युः । द्विरैकविंशतिः पष्ठिः । त्रिंश-
वेका च सप्तमाः । चतुर्विंशएकविंशद्ग्याम् । परो द्वाविंशक उच्यते ।

एकविंशकमिहाद्य मुच्यते । सूक्तश्च गणना प्रवर्त्तते । आद्य-
सहितम् । स सप्तमं वृद्धिं विंशतिकं मृचंऽष्ट चापराः ॥१५॥

विदाइवै तु पद पर्याया, यं विद्यादिति पदं स्मृताः ।

प्रजापतिस्तैवकः स्यात्; त्रयस्त्वस्योदनो भवेत् ।

दृतीयमाहुरिह पंचविंशकं, कामसूक्तं वरुणो तथैव च ।

पंचमे, नवदशे च, विंशतेः; द्वे अर्चौ, नवदशापरे च ।

प्राण्याय, ब्रह्मचारी च; यौ ते, इन्द्रस्य प्रथमं, कुत ।

ये दाहवः, तृतीयं तु, सप्तपदविंशकानि तु ।

उच्छिष्टेऽध्यायतामन्यो, विंशतिः सप्त चापराः ।

इन्द्रो मन्यतु, माहसो, दिवश्चतुस्तर ।

द्वे, तिस्रो, विंशति पच; चतुर्दशश्चतुर्दश ।

चतस्रं, समातुपूर्वेण, शेषाः स्युस्त्रिंशतैः पराः ।

अथादश, आ नय, अग्निं धूमके तिस्रः, यन्मन्युः, इत्यत्र चतुर्दश च ।

एकादशैव उपमिताम्, इति स्युः, तथैव सौद्रेणि परास्तु विंशतेः ॥१६॥

मीमन्त्यधिका पष्ठिः, स्वर्गः पष्ठिः, नडस्तु पंचोना, सप्तमिस्त्वा तु यशाः,

ब्रह्मगवीः सप्त पर्यायाः । पष्ठिः, यद्वत्स्वारिश्वर यद्विंशति यद्वं पर्यायाः । एत-
त्काश्चि रोहितानामतोन्त्यर ।

आद्यः सौर्यश्चतुःपष्टिः पंचसप्ततिरुत्तरः ।

मात्याद्यः सप्त पर्याया एकादश परो भवेत् ।

प्राजापत्यो ह चतुष्कः पंचपर्याय उत्तरः ।

एकपष्टिश्च पष्टिश्च सप्ततिर्यथाधिकात् परः ।

एकोन नवतिथैर्वै यमेषु विहिता ऋचः ।

इत्येतत्समनुक्रान्त मृचस्त्रिंशद्विंशतिः ॥१७॥

इति चतुर्थः पटलः समाप्तः ।



आचार्यसंहिताया तु पर्यायाणामतः परम् ।
 अत्रसानसख्या वक्ष्यामि यावतीयत्र मिश्रिताः ।
 त्रयोदश दशाष्टौ च ततः षोडश षोडश ।
 विराड्वायां चतुष्कस्तु पट् पर्यायास्तु निश्चिताः । यो विद्यायाम् ।
 दश सप्त च पूर्वः स्याद् द्वितीय स्यात्त्रयोदश ।
 तृतीयो नवको दृष्ट तस्माद् द्वौ दशकौ परौ ।
 षष्ठ तु चतुर्दशमाहु षड्विंशो ब्राह्मणयोग्य ।
 एकविंशद् भवेत्पूर्वं तस्माद् द्वामप्तति परः ।
 तृतीय सप्तको दृष्टो बृहस्पतिशिरस्यपि ।
 वचनानि च पट् पच षोडशैकादशाष्ट च ।
 ब्राह्मणभ्यां पंचदश तस्माद् द्वादशक पर ॥१८॥ रोहिन्
 चतुर्थस्यावमानानि वक्ष्यमाणानि तानि शृणु ।
 त्रयोदशाष्टौ च ततः पर सप्त सप्त दश षट् च बोध्या ।
 षष्ठ पंचक उच्यते ।
 द्वारप्राजापत्योरेव सख्यां वक्ष्यामि तानि शृणु ।
 अष्टौ ह्यग्नौ सतस्त्रिंश देकादश परा भवेत् ।
 ह्यग्नौ तु विंशतिस्तुर्य पंचमः षोडश स्मृतः ।
 विंशति पट् च षष्ठश्च सप्तमः पंचक उच्यते ।
 एकादशकाख्योऽत्र बोध्या द्वावाद्यावच निश्चितौ त्रिकौ तौ ।
 षष्ठ ॥ चतुर्दशात्र विंशद् दश दशमं नवमस्तु सप्तक स्यात् ।
 चत्वारि विंशतिश्चैव सप्तमो वचनानि तु ।
 अष्टमं नवकं विंशत् पंचको दशमात्पर ।
 प्राजापरयस्य सर्वस्य परमस्य पुन शृणु ।
 त्रयोदशाद्यं विजानीयाद् द्वौ षट्कौ सप्तमं पर ।
 आद्य दर्शनं देकादशकं तस्माच्च परं द्वाधिकं विहितम् ।
 एकादश वै त्रिगुणान्यपर ।
 चत्वारि वै वचनानि परश्चत्वारि वै वचनानि पर इति ॥१९॥

इति पंचपटलिका समाप्ता ।



ओ३म

भावानुवाद ।

प्रथम पटल ।

उक्तानुक्त (कहे हुए के न कहने) के जिस न्याय=नियम को परियम्लव (ऋषि) बोला, तथा पर्यायों और ऋचाओं के (नियम को भी) उसे हम यथाक्रम कहेंगे ।

बहुत से अव्ययेत=संयुक्त=मिले हुए (मन्त्रों के) जहाँ अनेक सदृश पद (आये) तो उन में जो आदिष्ट=कहा हुआ (पद) हो, यही उक्तानुक्त कहाता है ।

उस (उक्तानुक्त) के उत्पन्न=प्रादुर्भूत होने पर, संशब्द=आदिष्ट अर्थात् सांकेतिक पद को प्रकरण के अन्त्य में (रखे) । अन्यत्र उस के आरम्भ और समाप्ति का एक पद कहे ।

अन्त्य=अन्त बाँधे (पद) को आरम्भण जाने (पकड़ ले) तथा आद्य को छोड़ दे । कां० २ सू० १६ में 'अग्ने यत् ते' पाँच मन्त्रों के आरम्भ में आता है । वहाँ प्रथम और अन्त का मन्त्र छोड़ के, शेष, २, ३, ४ मन्त्रों में 'ते' पद को पकड़ कर 'अग्ने यत्' छोड़ देना चाहिये अर्थात् मन्त्र २ से ते हरेः' इत्यादि ही लिखना चाहिये । वैसे ही कां० ८ सू० १० के पर्याय २ में पूर्व ८ । १०, १ में आये 'सोदकामत्' पद को न लिख कर 'सान्तरिक्षे' से मन्त्रपाठ लिखना चाहिये । यही यहाँ निदर्शन=उदाहरण है ।

पुनः, जहाँ से आगे आदि वा अन्त के (पदों की) निवृत्ति होवे, उसी से वहाँ उन के सन्निहित पद कहने चाहियें । 'ते बहूः'

५। ३१। १ सूक्तसप्तमी में तथा 'विशोषायुः' ५। १०। १ यहां उदाहरण है ।

विशेष विचार । सूक्तसप्तमी से सम्भवतः कां० ४ का अभि-
प्राय है । वही सात २ ऋचाओं के सूक्त हैं । वहां भी 'ते चतुः'
४। १७। ४ है । दोनों काण्डों के मन्त्रों के कई पद सदृश हैं । यह
नियम पांचवें काण्ड में अधिक चरितार्थ होता है, अतः वही का
प्रमाण मूल के टिप्पण में धरा गया है ॥ १ ॥

'आकार' जहां पर आद्य हूं, वहां भी दो पद रहे । 'सा पितृन्'
प्रभृति पर्यायों में 'एहीति' = आ + रहि ८। १०। ४, ५ यहां
उदाहरण है ।

अवसान का एक देश जो अवसानता = अन्तना को प्राप्त
होवे, वहां भी क्रमपाठ की समाप्ति के लिये दो पद रहे । 'यो ३ जम् =
यः + अजम्' ६। ५। २२ 'स्कम्मं तम् १०। ७। ४ यह उदाहरण जाने।
अर्थात् इन दो २ पदों को रख के शेष पदों की नियुक्ति करे ।

जो अवसान हो कर पुनः अवयव हो जायें अर्थात् अवसान
का भाग धन जाये, उन के अवसानों को अन्त्यो के समान उलटान
करे । 'धीरत् क्षेत्रियनाशनि' २। ८। २ यहां उदाहरण है । जो
तुल्य अवसान है, वह मारा ही छोड़ दे । 'तमिन्द्रः प्रत्यमुधत्'
१०। ६। ७ इस में मारा पहला अवसान और 'यं कुर्वन्म' १। १। ३२
यहां तुल्य मध्यावसान मारा २ छोड़ दे ।

पूर्वोक्त विधि में कहीं हुई सब (ऋचाओं में) यदि जाने तो
उन सब के सदृश अवसानों को ऐसे ही छोड़ दे । 'यथा घांथ'
२। १५। १ 'शेरभक' २। २४। १ 'यो यं नृदायं नाम' ६। ५। १, ३१
'यथा यानो यनस्पतीन् १०। ५। १३ यहां उदाहरण हैं ॥ २ ॥

नामा अवसानों वाला हो के जो पुनः एक (अवसान) में हो जावे, तो उसी से समाप्ति करने चाहिये और एक में भी उसे पड़े।

वि० वि० । 'अ', 'व' में चकार और घकार का कोई भेद प्रतीत नहीं होता । 'चापि=वापि' बन जाता है । अतः इस सम्बन्ध में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता ।

इस का उदाहरण 'ममिमाम्' १८ । २ । ४४ है । वहाँ 'यथा परं न मासाते । शते शरत्सु नो पुरा ।' यह दो अवसान हैं । अगले मन्त्र में ये पद एक अवसान में आते हैं । से प्रथम मन्त्र से ही समाप्ति परे । ऐसे ही 'उत्तरस्याम्' ४ । १४ । ८ जानें । यह उदाहरण इतना स्पष्ट नहीं ।

पर्यायों में अवसानों का ऋचायों के समान विधि हो । जैसे 'सर्पदा' १० । ६ । १२ 'क्षिप्रम्' १२ । ६ । १ यह उदाहरण है । 'अ', 'व' में जो 'घेपरत' पाठ है वह सन्दिग्ध है ।

अवसानों के जो गण पृथक् २ सम्बन्ध रखे वाले हैं, उन में अने विधिपूर्वक जानने चाहिये । 'संक्रामत्' ८ । १० । २ निदर्शन है । यहाँ गणों में समान पद दूर होने से पता नहीं लगता था, अतः ऐसा कहा पड़ा । इस भिन्न प्रकार को बिहटने ने स्वयं जान कर यह लिखा है —

"Sometimes the case is a little more intricate. Thus in viii 10, the initial words सोऽक्रामत् are written only in verses 2 and 29, although they are really wanting in verses 9-17, *pariyaya* II (verses 8-17) being in this respect treated as if all one verse with subdivisions." (p. CXX.)

जो नियम अव्ययों=सयुक्तों में देखा गया है, वहीं असयुक्तों में भी दिखाई देता है। वह तुल्य पृथक् पृथक् करे। और उन्म में पड़ एक बार ही पड़े। 'यदेनमाह घ्रात्य' १५। ११। ४ चौथे मन्त्र में उदाहरण है। यहाँ सातवें और नवमें मन्त्र में यह पाठ नहीं है, दशम में है; अतः यह नियम कहना पड़ा।

इस से आगे फहे हुए नियमानुसार उत्सर्जन करे। अन्त में 'सी' से कीर्ति करे। 'ते यश' निर्देशन है। इस उदाहरण का पता नहीं लगा ॥ ३ ॥

यदि पुनः ऋचापं तुल्य=सदृश हों, तो जहाँ तक उन का विशेषण हो, वहाँ तक शास्त्र-विधि अनुकूल उन्हें पृथक् करे।

उस से आगे संख्या का प्रयोग करे। 'या दशशप' १। २८। ३ तथा ४। १७। ३ यहाँ उदाहरण है। यह मन्त्र दो स्थलों में आया है। उत्तर स्थल में मन्त्र-प्रतीक देकर "एका" आदि संख्या का प्रयोग करे। 'सं वो मनांसि' ३। ८। ५ तथा ६। २४। १ में आया है। वहाँ भी ऐसे ही करे।

अहाँ संदेह हो कि एक ही मन्त्र दोबारा आया है या दो साथ २ घाले मन्त्र हैं तो 'पूर्वा' का विशेषण देवे। 'यस्ते धाना' १८। ३। ६६ तथा १८। ४। २६ में आया है। दोनों स्थलों में इस से पूर्व मन्त्र भी सदृश है।

जहाँ दो मन्त्र एकत्र आवें और जहाँ उनके आगे दो मन्त्रों में सदृश प्रतीक हो, तो कौन सा अभिप्रेत है, यह संदेह मिटाने के लिये उत्तर स्थल में आदि में पाठ करे। 'पूर्वापरं' ७। ८२। १ तथा १३। २। ११ और १४। १। २३ में प्रतीक है। इस के आगे 'नवो नवः' ७। ८२। २ और १४। १। २४ में आया है। यहाँ १३। २। १ की दाया दूरीकरणार्थ यह नियम है।

एक, दो, तीन ऋचाएं जहां एकत्र आवें और वैसे ही आगे भी आवें, तो उत्तर स्थलों में 'एका' 'द्वे' 'तिस्रा' यह लिख दे । घर्ग आदि में भी वैसा ही करे । शेष अर्थ किसी हस्तलिखित संहिता को न देखने से पूर्ण स्फुट नहीं ।

प्रथम पटल समाप्त हुआ ।

द्वितीय पटल ।

अथ छन्द=अथर्वसंहिता में माघ=काण्ड, सूक्तादि की स्थिति कहेंगे । तीन प्रकार वाले सूक्तवर्णन, ऋष्यपर्यायिक और यजुषों के अवसान को जानने के लिये व्याख्यान करेंगे । पहले चार काण्डों में पांच सूक्तों के अनुवाक हैं, छः अनुवाकों को छोड़ कर । अर्थात् काण्ड १ अ० १, ५, ६ । कां० २ अ० ३, ४ । कां० ३ अ० ६ ।

इन छ अनुवाकों को छोड़ कर शेष सब पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं । महत् अर्थात् पंचम काण्ड में एक अर्थात् अनुवाक ४ को छोड़ कर शेष पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं । सूक्तों अर्थात् तीन ऋचा वाले छठे काण्ड में प्रति अनुवाक दश (१०) सूक्त का है । पर पांच आपवादिक अनुवाक हैं । ३७, ११, १२ और १३ । इन में प्रथम चारों में ११ सूक्त और अन्तिम में १८ सूक्त हैं । एक ऋचा वाले सप्तम काण्ड में एक २ ऋचा वाला सूक्त है ।

सुक्तों अर्थात् ८ वें से ११ वें काण्ड तक दो दो सूक्त वाले अनुवाक हैं । १२, १३, १४ काण्डों में प्रत्येक अनुवाक एक एक सूक्त वाला है ।

१७ वें अर्थात् शेष काण्ड में एक सूक्त के एक ही अनुवाक का काण्ड है । यह पूर्वोक्त क्रम पर्यायों को छोड़ के है । 'मात्य

और 'प्राजापत्य' अर्थात् १५ तथा १६ काण्ड का पृथगुत्तर कहा है। सूक्तावस्था यथा काण्ड (आगे कही हुई) है। वहाँ न प्रत्युपाय और न दुर्वाय है। यह पाठ अस्पष्ट है। अपवाद अधिक हैं। महत् अर्थात् पञ्चम काण्ड में काण्ड-समाप्य आठ ऋचा वाले सूक्तों का है ॥ ५ ॥

आगे प्रतीक धर के यह बताया है कि जो अपवाद पूर्वोक्त प्रसङ्ग में बताए गये थे, उन में किस काण्ड के किस अनुवाक में कितने सूक्त हैं। आगे एकत्र=सतत काण्ड में श्रत्येक अनुवाक कितने सूक्तों का है यह कहा है। अर्थ बहुत सरल होने से नहीं कहा।

१, २, ३, ४, ५, ६ तथा ७ काण्ड में प्रतिसूक्त क्रमशः ४, ५, ६, ७, ८, ३ तथा १ ऋचा वाले हैं। उन के अपवाद काण्ड सात से आरम्भ होते हैं। ये प्रतीक धर के सब गिना दिये गये हैं। सो सारे मूल में देलने चाहिये। 'अ', 'ब' दोनों मूल पुस्तकों में काण्ड ६ का अङ्क इस पटल में दो बार आया है। हम ने इसे वैसा ही दे दिया था। पीछे विचार हुआ कि यह लेखक-प्रमाद से ही हुआ है। सो पाठकों को इसे शुद्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकार पांच पटलों में सारे बीस काण्ड हो जायेंगे। इस संशोधित गणनानुसार १।१० वाले सातवें काण्ड के अपवादों में 'आ सुमस्तः' (७६) छः ऋचा वाला सूक्त भूल से रह गया है। इस बात का ध्यान शङ्करपाण्डुरङ्ग ने भी अपने आलोचनात्मक विशासन पृ० १८ पर दिखाया है।

मुम्पई संस्करण में सूक्त ७६ को चार वा दो ऋचा वाले दो सूक्तों में विभक्त किया है, परन्तु पटलिका में इस के लिये कोई प्रमाण नहीं।

द्वितीय पटल समाप्त हुआ ।

तृतीय पटल ।

पण्ड दश का अन्तिम श्लोक अशुद्ध प्रतीत होता है । किसी लिखित ग्रन्थ के आधार के बिना इस का वयार्थ पाठ नहीं हूँदा जा सकता ।

पण्ड ११ से एक अवसान, तीन अवसान, चार अवसान और पांच अवसानों वाली श्रुचाओं की प्रतीकें धरी हुई हैं । फरे मन्त्र वर्लिन संस्करण में दो अवसानों वाले हैं । मुम्बई संस्करण के सम्पादक ने उन्हें प्रायः पञ्चपटलिकानुसार कर दिया है ।

तृतीय पटल समाप्त हुआ ।

चतुर्थ पटल ।

(१) आद्य (काण्ड) के प्रथम (अनुवाक) में श्रुचाप ६ (अधिक है २० से, ऐसा) जाने । ५+२० अगले में । पांचवें में ८+२० । ११+२० अगले में है । बीस से (आदर्श) करते हैं । बीस इन से दूसरों में ।

प्रथम काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की श्रुचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $२८+२५+२०+२०+२८+३१=१५२$ । प्रथम काण्ड के सूक्तों में श्रुचा-आदर्श चार है ।

(२) पांच श्रुचा वालों में से आद्य अनुवाक (में) हैं बीस से नौ ऊपर अर्थात् २९ । ऐसे ही अन्त्य से पूर्व में । ८+२० करे दूसरे में । आठ कम, उस सौ के अर्ध से तीसरे में (अर्थात् ५०— $८=४२$) । दो कम पचास से चतुर्थ । तीस से एक अधिक अन्त का ।

दूसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की श्रुचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $२८+२८+४२+४८+२८+३१=२०७$ । दूसरे काण्ड के सूक्तों में श्रुचा-आदर्श पांच है ।

(३) तीस का निमित्त (आदर्श) छः ऋचा वाले (सूक्तों में) करना चाहिये । तैत्तिरीय, दश, आठ, दश और पाँच और चौदह अन्त वाले में । (इस प्रकार) अनुवाक के पीछे अनुवाक में यथानाम संख्या जाने, अधिक निमित्त से ।

तीसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $३३+४०+३८+४०+३५+४४=२३०$ । तीसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श छः है ।

(४) सान, नौ, इक्कीस, तय करे बारह । आगे पाँच, छः और सात भी जानने चाहियें । सत्तरह वाला अन्त का । छः ऋचा वाले के समान ।

चौथे काण्ड में आठ अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $३७+३६+५१+४२+३५+२६+३७+४७=३२४$ । चौथे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श सात है ।

(५) प्रथम से परला ग्यारह कम साठ । दो छः अर्थात् बारह कम साठ वाला प्रथम । तीन कम साठ वाला तीसरा । छठे में नौ और एक और साठ । परले में साठ और नौ । उस से भी परले 'एक वृशेति' वाले में तीन और अस्सी ।

पाँचवें काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $४८+४६+५७+८३+६६+७०=३७०$ । पाँचवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श आठ है ।

(६) प्रथम, दशम और पञ्चम अनुवाकों में, यह छठा तीस वाला । दो अधिक तीस से 'अपचिद्' अर्थात् नवम अनुवाक में, (और इतनी ही) द्वादसे अनुवाक में । चार अधिक तीस से सातवाँ है । इक्कीस वाले आठवें को कहते हैं । अड़तीस वाला

घारहवां । उस से पहला सैतीस वाला । जो अगला वह चौसठ वाला । तीसरा और चौथा तैंतीस वाले ।

छठे काण्ड में तेरह अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $३०+३२+३३+३३+३०+३०+३४+३१+३२+३०+३७+३८+६४=४५४$ । छठे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श तीन हैं । इन्हीं सूक्तों को वृच कहते हैं ।

गिहटने ने छठे अनुवाक के सम्बन्ध में जो पाठ सर्वानुक्रमणी से उद्धृत किया है, वह उसके टिप्पण सहित यह है—‘षष्ठो त्रिशत्कौ (पदो, त्रिशत्कौ ?)

(७) इस से आगे एक ऋचा वाले सूक्तों की कीर्तन कंकगा संख्या । आठ (बीस से अधिक) प्रथम (अनुवाक) में । दो दूसरे में जाने । आठ और तीन जानने चाहिये तीसरे में । दो चार पांच अर्थात् दश ऋचाएं सन्निविष्ट हैं चौथे में । पांच अधिक बीस से पांचवें में हैं । दो चार इक्कीस छठे में । इक्कीस सातवें में । चौबीस, इक्कीस से । अगला बत्तीस वाला कहा जाता है ।

सातवें काण्ड में दश अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । $२८+२२+३१+३०+२५+४२+३१+२४+२१+३२=२८६$ । सातवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श एक है ।

प्रथम सात काण्डों में कुल ऋचा-संख्या- $१५३+२०७+२३०+३२४+३७६+४५४+२८६=२०३०$ अर्थात् दो सहस्र तीस मन्त्र ।

इस काण्ड की समाप्ति यहां होनी चाहिये क्योंकि आगे नर गायना आरम्भ होती है ।

इक्कीस ऋचा वाला (आठवें काण्ड का) प्रथम (सूक्त) कहा जाता है । (आगे) गायना सूक्त-क्रम से प्रवृत्त होती है । प्राय के साथ । वह आठवां सूक्त अठारहवां ऋचा वाला है ॥ १५ ॥

(अष्टम काण्ड के नवम सूक्त से आगे) 'विराड् वा' छः पर्याय हैं। (नवम काण्ड के पांचवें सूक्त से आगे) 'यो विधात' छः पर्याय हैं। (इन से अगला ही अर्थात् तृतीय अनुवाक के आगे) 'प्रजापतिः' याज्ञा एक पर्याय है। (इन से परे एकादश काण्ड के दूसरे सूक्त से आगे) 'तस्यौदनस्य' वाले तीन पर्याय हैं।

(कां० ८ का) चतुर्थ सूक्त यहां पच्चीस ऋचा वाला कहा जाता है। (इतनी ऋचा वाला ही) कामसूक्त (कां० ६ सू० २) तथा 'अयं मे वरयो' (१०।३) है।

अ, व और इ में "वरयो" पाठ है। ऋटने ने 'वरयो' पाठ रखने की सम्मति दी है।

(काण्ड घाट के) पांचवें, और उन्नीसवें (अर्थात् काण्ड नवम के नवम सूक्त) में बारहस ऋचाएं हैं। और उन्नीसवें से पहले (अर्थात् कां० ६ सू० ८) में भी (बारहस ही)।

'प्राणाय' ११।४ और 'ब्रह्मचारी' ११।५, 'यौ ते' ८।६, 'इन्द्रस्य प्रथमः' १०।४, 'कुतः' ८।६, 'ये बाहवः' ११।६ तथा ८।३ ये सात छप्पीस ऋचा वाले हैं।

'उच्छिष्टे' ११।७, 'अघायनम्' १०।६ और अन्त्य का ११।१० सत्ताईस ऋचा वाले हैं। 'इन्द्रो मन्वतु' ८।८, 'साहस्रः' ६।५, 'दिवः' ६।१ चार अधिक, (धीम से अर्थात् चौबीस) ऋचा वाले हैं।

दो (अधिक तीसरे) १०।१, तीन (तीस) १०।२, बीस (तीस) १०।५, पांच (तीस) १०।६, चौदह (तीस) १०।७, चौदह (तीस), १०।८, चार (तीस) १०।१०, सात (तीस) आनुपूर्वी से, शेष हैं तीस से परे ११।१।

अठारह (तीस) 'अग्नि नयः' ६।५, 'अग्नि वृमः' ११।६,

तीन (+वीस) और 'यन्मन्युः' ११।८ यहां चौदह (+वीस) धाळा है। ग्यारह (+वीस) उपमिताम' २।३ है। वैसे ही एकत्तीस धाळा रुद्र सूक्त ११।२, यहां संख्या धीस को आदर्श मान के उस से ऊपर कही है ॥ १६ ॥

पहले विभाग में गणना अनुवाक-क्रम से थी। इस विभाग में सूक्त-क्रम से हो गई है। यहां दूसरे सूक्त के सम्बन्ध में 'आद्य सहितम्' लिखा है। इसका अर्थ इतना स्पष्ट नहीं। इस गणना में पर्याय तो गिन दिये गये हैं, परन्तु उन के अवसानों की संख्या अन्तिम पटल में दी गई है, अतः वह वहीं गिनी जायगी।

पूर्वोक्त ८-११ काण्ड तक की श्रुचा-गणना क्रमशः यह धनी।

सू०	कां० ८	कां० ९	कां० १०	कां० ११
१	२१	२४	३२	३७
२	२८	२५	३३	३१
३	२६	३१	२५	पर्याय
४	२५	२४	२६	२६
५	२२	३८	५०	२६
६	२६	पर्याय	३५	२३
७	२८	"	४४	२७
८	२४	२२	४४	३४
९	२६	२२	२७	२६
१०	पर्याय	२८	३४	२७
	२२६	२१४	३५०	२५७

१. यह गणना मूल में नहीं मिलती। प्रतीति होता है मूल में रह गई है।

भौमः=भूमि देवता वाला १२।१ तिरसठ वाला । स्वर्गः १२।३ साठ वाला । नडः १२।२ पांच कम अर्थात् पचपन वाला । वश (देवतात्मक) सात कम अर्थात् तरेपन वाला । ब्रह्मगवी देवता वाले सात पर्याय (आगे) ।

साठ १२।१, छयालीस १२।२, छम्बीस १३।३, आगे छः पर्याय । यह तेरहवां काण्ड रं हित देवता वाला है ।

(कां० १४ का) प्रथम (अनुवाक=सूक्त) सूर्य देवता वाला चौसठ वाला । पचहत्तर वाला अगला ।

(कां० १५) आत्य काण्ड कहाता है । उस को आरम्भ में सात पर्याय हैं, और उनसे आगे ग्यारह । इस में दो अनुवाक हैं । उन्हीं के अन्तर्गत ये दो पर्याय-समूह हैं ।

भ्राजापत्य (कां० १६) में भी दो अनुवाक हैं । उन में चार और पांच पर्याय क्रमशः हैं ।

इकासठ, साठ, तिहत्तर, नवासी, क्रमशः ऋचा-संख्या यम अर्थात् काण्ड अठारह के चार अनुवाकों में है ।

यहाँ तक टीक अनुक्रम कहा गया है । तीस ऋचाएं 'विपासहिम्' प्रतीक वाले सनारहवें काण्ड में हैं । इसमें एक ही अनुवाक है ।

सू०कां० १२	कां० १३	कां० १४	कां० १८	कां० १७
१ ६३	६०	६४	६१	३७
२ ५५	४६	७५	६०	
३ ६०	२६		७३	
४ ५३	पर्याय		८६	
५ पर्याय				
२३१	१३२	१३६	२८३	३७

चतुर्थ पटन समाप्त हुआ ।

पञ्चम पटल ।

इस से आगे आचार्यसंहिता में जो पर्यायों के अवसानों की काण्डों में मिश्रित संख्या है, उसे कहेंगे ।

तेरह, दश, आठ, तत्पश्चात् सोलह, सोलह, 'धिराद् घा' वाले में, तय चार, यहां छ पर्याय निश्चित हैं ।

अष्टम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या— $१३+१०+८+१६+१६+४=६७$ ।

नवम काण्ड में 'यो विद्यात्' के पर्याय में अवसान-संख्या-पहला सत्तरह वाला है । दूसरा है तेरह वाला । तीसरा नौ वाला देखा गया । उस के आगे दो दश २ वाले हैं । छठा चौदह वाला है । अगला ब्रह्म की गौ वाला छप्पीस वाला है ।

नवम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या—

$१७+१३+६+१०+१०+१४=७३$ । $७३+२६=९९$ ।

(काण्ड दश में कोई पर्याय नहीं । काण्ड ग्यारह में सूक्त दो से आगे एक पर्याय-समूह है । उस में) एकत्तीस वाला पहला है । उस से आगे यहतर वाला है । तीसरा सात वाला 'बृहस्पति शिरः' वाले पर्यायों में है ।

एकादश काण्ड के अवसानों की कुल संख्या— $३१+७२+७=११०$ ।

दूसरे पर्याय पर ब्रिहदने का नोट (पृ० ६२८) पर देखो । उस के अनुसार यस्मिन् संस्कर्ण में यह दूसरा पर्याय केवल अठारह गणों या दशकों में ही विभक्त है ।

पटलिका के दूसरे विभाग की कुल संख्या —

श्रुचा संख्या— $२२६+२१४+३४०+२५७=१०४७$ ।

अवसान संख्या— $६७+६६+११०=२७६$ ।

दोनों की मिली हुई संख्या— $१०५७+२७६=१३२३$ ।

ब्रह्मगवी देवतात्मक १२।५ के पर्यायों में वचन हैं,—छः, पांच सोलह, ग्यारह और आठ । उस से आगे पन्द्रह और फिर बारह ।

बारहवें काण्ड के कुछ वचनों की संख्या— $६+५+१६+११+८+१४+१२=७३$ ।

रोहित अर्थात् काण्ड तेरह के चौथे अनुवाक के जो कहे जाने वाले अवसान हैं, उन्हें सुनों । तेरह और आठ । उन से आगे सात, सतरह, छः । छः पर्याय पांच वाला कहा जाता है ।

तेरहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की कुछ संख्या— $१३+८+७+१७+६+४=५६$ ।

चौदहवें काण्ड में कोई पर्याय नहीं ।

अब 'प्रात्य' और 'प्राजापत्य' अर्थात् काण्ड १५, १६ के अवसानों की संख्या कहेगा, उन (अवसानों) को सुनों । आठ, आगे दो कम तास, अगला ग्यारह वाला है । चौथा दो कम बीस वाला, पंचम सोलह वाला है । छठा छप्पीस वाला, सातवां पांच वाला कहाता है । दूसरे अनुवाक के तीन पर्याय (३, ४, ५) ग्यारह वचनों वाले जानों । निश्चय ही दो आदि के तीन तीन वचनों वाले हैं । छठे को चौदह वाला जानें । दशम दश वाला, नवम सात वाला है । सातवें में चौबीस वचन हैं । आठवां नौ वाला जानें । दशम से अगला ग्यारहवां पांच वाला है ।

पन्द्रहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—

प्रथमानुवाक में— $८+२८+११+१८+१६+२६+५=११२$ ।

द्वितीयानुवाक में— $३+३+११+११+११+१४+२४+६+७+१०+५=१०८$ । कुल संख्या— $११२+१०८=२२०$ ।

प्राजापत्य काण्ड के प्रथमानुवाक * और फिर द्वितीयानुवाक के सम्यन्ध में सुनों । पहले तेरह वाला जानें, दूसरा और तीसरा छः छः वाले, सात वाला अगला चौथा । (यहां प्रथमानुवाक समाप्त हुआ) । पहला दस वाला, अगला ग्यारह वाला, उस से अगला तेरह वाला । अगला तीन गुणा ग्यारह अर्थात् तैंतीस वाला । अगले में चार वचन हैं । दो बार पाठ ग्रन्थ समाप्त्यर्थ है ॥ १६ ॥

सोलहवें काण्ड के पर्यायों के अद्यसानों की संख्या—
प्रथमानुवाक में— $१३+६+६+७=३२$ ।

द्वितीयानुवाक में— $१०+११+१३+३३+४=७१$ ।

कुल संख्या— $३२+७१=१०३$ ।

पटलिका के तीसरे विभाग की श्रृंखला संख्या— $२३१+१३२+१३२+२८३+३७=८०३$ ।

अद्यसान-संख्या— $७२+५६+२२०+१०३=४५१$ ।

दोनों की मिली हुई संख्या— $८०३+४५१=१२५४$ ।

पञ्चपटलिकानुसार अठारह कण्डों के मन्त्रों और वचनों की कुल संख्या— $२०३०+१३२३+१२७४=४६२७$ ।

पञ्चम पटल समाप्त हुआ ।

पञ्चपटलिका का भावानुवाद समाप्त हुआ ।



पटलिकान्तर्गत मन्त्र-प्रतीकानुक्रमणी ।

अङ्को से सङ्ख्यं जगिमेत है ।

अक्षितिम्	१२	अन्तरिक्षेण	१३
अक्षीम्यां ते	७	अन्यद्य नः	१०
अग्नये कव्यवाहनाय	१२	अपचिताम्	१०
अग्नाविष्णु महि	१०	अपचितः प्रपतत्	६
अग्निधासाः	१२	अप नः शोशुक्षत्	७
अग्निस्तफमनम्	८	अपि वृक्ष्य	१०
अग्ने अक्रव्यात्	१२	अपेक्षरिः	१३
अग्ने इन्द्रश्च	१०	अपो दिव्याः	१०
अग्नेमांगस्थ	१३	अप्सु ते राजन्	१०
अज्ञादज्ञात्	१३	अभित्या	१३
अजो ह्यग्नेः	७	अभित्यम्	१०
अनि धन्वानि	१०	अमीघर्षेण	६.७
अति मात्रम्	८	अम्यर्चत्	१०
अत्रैतानिन्द्र	१३	अमुत्र भूयात्	१०
अदितिर्घोः	१०	अयं ते योनिः	७
अदो यदवधावति	७	अयं लोकः	१३
अनङ्गवान् दाधार	७	अयं सहस्रम्	१०
अनाधृष्यः	१०	अयं सहस्रमा	१२
अनु सूर्यम्	६	अर्घमर्घेण	१३
अन्तरा घाम्	१३	अर्बुदिर्नाम्	१३
अन्तरिक्षं धेनुः	१३	अवैरहत्याय	१३
अन्तर्धिः	१२	अश्म वर्म मे	७

अहो रात्रेः	१३	इयं वीर्य	६
अहं रुद्रेभिः	७	इदं धृषाम	७
आ त्वा अग्ने	१३	ईशानां त्वा	७
आ त्वा गन्	७	ईशां वो मरुतः	१३
आ नो अग्ने	७	ईशां वो वेदराज्यम्	१३
आ नो भर	७	उच्चैर्घोषः	८
आ पश्यति	७	उत्तरं द्विपतः	१३
आवयः	६	उत्तरस्याम्	३
आ मा पुष्टे च	१३	उत्तिष्ठताय	१०
आ यमो गन्	७	उतो अस्य यन्धुकुद्	७
आरे अभूत	१३	उदगाधयम्	१३
आवतस्ते	८	उदपुरसि	१२
इतो जय	१३	उदस्य इयाधः	१०
इत्वं अनाभि	१०	उदायुरुद्	१३
इदमुद्राय	१०	उद्धर्पन्ताम्	१३
इदं यत् कृष्णः	१०	उद्धर्षिणाम्	१३
इदं तु मे	१३	उद्यन्नादित्यः	७
इन्द्रं सुपस्य	७	ऊर्ध्वं विभ्रत	१०
इन्द्रमहम्	७	ऊर्ध्वा अस्य	८
इन्द्रो रूपेण	१३	ऋचं साम	१०
इन्द्रावाहि	१३	ऋधरु मन्त्रः	७
इमं मे अग्ने	६	एका चा मे	८
इमामग्ने	१३	एतं भागम्	६
इमा यास्तिष्ठः	७	एतं रुधस्याः	६
इमे मदूताः	१२		

एष यमानम्	११	ते यना	३
पहि जीयम्	७	ते हरः	१
भोजोऽस्योजो	७	त्यमगे क्रतुभिः	१४
घो ते मे	८	त्यमिन्द्रस्य	१३
क इदम्	१३	त्यं न इन्द्रोतिभिः	१३
कथं महं	८	त्यं नो मेघ	६
कश्यपस्त्वाम्	१३	त्यया पूयम्	७
कुहं देयाम्	१०	त्यं रक्षन्	१३
कुप्यां नियानम्	१४	त्यं यीम्धान	६
क्षिप्रम्	३	दृष्टिर्दृष्ट मग्न	८
क्षेत्रियात्	७	दिधे स्यादा	७, १२
खट्वरेऽधि	१३	दिशो घायुः	१
चक्षुः श्रोत्रम्	१०	दिशो धेनुवः	१३
जनाद्विभजनीनात्	१०	दीर्घायुन्याय	८
तदिदास	७	दृष्ट्या दृष्टि	६
नमिन्द्रः	२, १३	दंष्ट्र प्रत्नान्	१३
ता न प्रजा	१२	देयां देवाय	१३
तांस्तस्यौजाः	७	देयो देवेषु	१३
तास्ते रक्षन्तु	१२	द्यावापृथिवी	१
तिरुदितराजः	१०	धीर्धेनुः	१३
ते चक्रुः	१	धर्तसि	१३
ते त्वा रक्षन्तु	१२	धाता दधानु	१
तेनेमां मक्षिमा	१३	धीती वा ये	१
ते वदन्	८	नदीं यं तु	१
		नमस्ते घोषिणीभ्यः	१

नमो रुराय	१०	प्रपतेतः	१०
नव प्राणान्	८	प्रपथे पथात्	१०
नद्यो नद्यः	४	प्राग्मये वाचम	८
निष्पुचः	१४	प्राचीदिक्	१३
निः साक्षाम्	७	प्राच्यादिशः	१२
ने छत्रुः	७	प्राच्यै त्या दिशे	१३
नैतां ते	८	प्राणापानौ	१२
न्यस्तिक्य	८, १२	प्रानर ग्निम्	७
पदमाः स्थ	१३	प्रान्यात्	१०
पयस्यतीः	७	बृहता मनः	१३
पर्वतादियौ	८	बृहन्मेयाम्	७
पार्श्वस्य	७	ग्रह जघनम्	७
पुमान्पुंस	७	ग्रहास्य शीर्षम्	७
पुरस्तादयुक्तः	८	शस्त्राणां जने	६
पूर्णा पश्चात्	१०	भूम्यां देवेभ्यः	१३
पूर्वापरम्	४, १०	भ्रातृभ्य	६
पृथिवी दग्धः	१२	ममाग्ने दधेः	७
पृथिवी घेनुः	१३	महत्सधस्थम्	१३
पृथिव्यामग्नये	७	मा त्वा क्रध्यात्	१३
पृथिव्यै श्रोत्राय	१२	मा परि देहि	८
प्रजावतीः	१०	मुञ्चामि त्वा	७
प्रतीचीनफलः	१२	मुमुकमस्मात्	१२
प्रथमा ह	७	यत्क्रयानः	१३
प्रनमस्य	१०	यजुनि यजे	८, १२

यज्ञेन यज्ञम्	१०	यस्माद्वाता.	१३
यज्ञ एति	१३	यस्मिन्विराद्	१४
यत्किञ्चासौ	१०	यस्यव्रतम्	१०
यत्तेदेवा	१०	यस्यास्त आसनि	८
यत्तेदेवा	८	यस्यां गायन्ति	१३
यत्तेवर्च	१३	यस्यां सद्यो	१३
यथाद्यौदच	२,७	यस्योरुदु	१३
यथा मांसम्	१३	य आत्मदा	७
यथा घातः	२	य इमां देवः	८
यथा इक्ष्म	१०	य इमे चाचापृथिवी	१४
यथा शेषः	१३	यावत्सर्प	१३
यथा सूर्यः	१०	यामदिवनौ	१३
यद्येवं पृथिवी	८	य पन्नं परिपदंति	६
यदग्ने तपसा	१०	या ये परि	१३
यदद् संप्रयतीः	७	यार्णवेऽधि	१३
यदद्यत्या	१०	या शशाप	४
यदाशसा	१०	यास्ते धाना	४
यदेतमाइ घात्य	३	यां ते चक्रु	८
यदेवाम	८	यां त्या गन्धर्वो	७
यद्येक वृषोसि	६, ८, १२	यां छिपद्	१३
यद्राजानः	७	या सुपर्णा.	१३
यद्दीधे	१३	ये जग्नयो	७
यं देवाः स्मरम्	८	ये च धीरा	१३
ययोरोजसा	१०	ये अ पितरः	१२
यस्ने गन्ध	१३	ये त्रिपन्ता	८

ये पुरस्तात्	७	यिञ्ज ते स्वप्न	१३
ये पुरुषे	१३	यिद्माशरस्य	७
ये याहवः	१३	यि य अङ्गात्	१३
ये शाखाः	१३	विद्य जित्	६
येषां पदवात्	१३	विषाणा पाशान्	६
ये ३ स्यांस्थ	६	विषासहिम्	१३
यो अङ्गयः	१३	विष्णोः क्रमोऽसि	१३
योऽजम्	२	विष्णोर्नु कम्	१०
योऽन्येषुः	१२	विहृदयम्	८
यो गिरिषु	७	वीरुतश्चेन्निय	२
यो नस्तायत	१०	वीहिस्त्राम्	१२
यो भारयति	१३	वैकङ्कतेन	७
यो वा आप	१४	वैकुर्वतम्	२
यो वै नैषाघम्	२, १४	वैश्वानर	६
यो वै कुर्वतम्	१४	शकधूमम्	६
य प्राणेन	१३	शेरभक	२, ७, १२
रथजिताम्	६	शं ते अग्नि	११
रात्रिमाता	७	शं ते नीहार.	१३
वनस्पतीन्वानस्पत्यान्	१३	शिवे ते स्ताम्	१३
घनस्पते	६	शुम्भनी	१०
घपटते	७	शुम्भताम्	१२
वायुरमित्राणाम्	१३	श्वन्वतीः	१३
वि ते मुञ्चामि	१०	सखासौ	१२
वि देवा	७	स पचामि	१२

समा च मा	१०	सांतपनाः	१०
संभानं न	१०	सान्नरिक्षे	१
संदानं घ	६	सा पितृन्	२
सं धो मनांसि	४	साहस्रः	१२
समं ज्योतिः	७	सिमोद्याली	१०
संशित मे	७	सिंहे व्याघ्रे	२
समिद्धो अग्निः	१०	सीरा युञ्जन्ति	७
समिद्धो अय	८	सुपर्णास्त्वा	८
समिमाम्	३	सुहृदत मृडत	१२
समुत्पतन्तु	७	सूर्यस्य रश्मीन्	१३
सम्यश्च तन्तुम्	१३	सोदकामत्	३
सरस्वती प्रतेषु	१०	सोमो राजा	१२
सर्धदा	३	स्फूर्मं तम्	२
स्त्र्यानिध्रे	१२	स्तुवानम्	७
सधिता प्रसवानाम्	८	स्वस्तिदा	१३
सहृदयम्	७	हरिणस्य	७



शुद्धि पत्रम् ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
विद्वानों	विद्वानों	६	भूमिका ६
स्मृतं	स्मृतम्	३	६
त्रयवसानाः	त्रयवसानाः	१२	८
प्राजापतयोः	प्राजापत्ययोः	१६	१५

शेष अशुद्धियां अनुवाद में ठीक कर दी गई हैं ।

